8

अनुमानखण्ड और उपमानखण्ड

ध्यान दें:

पूर्व पाठों में प्रत्यक्ष प्रमा, प्रत्यक्षप्रमाण, ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक, विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक तथा प्रत्यक्ष प्रमा के प्रकार ये विषय आलोचित कर दिये गये हैं। व्यभिचारदर्शन से तथा सहचारदर्शन से दृष्टान्तों में हेतु साध्यव्याप्य है इस प्रकार से व्याप्ति निश्चय होती है। यह निश्चय प्रत्यक्ष प्रमाण के बाहुल्य से होता है। वहाँ पर किसी पक्ष में हेतु को देखकर व्याप्ति संस्कार से अनुमिति उत्पन्न होती है। हेतु का प्रत्यक्ष तथा अनुमान का उपजीव्य होता है। प्रत्यक्षात्मक उपजीव्य का प्रारम्भ में निरुपण कर दिया गया है। अनुमान के द्वारा प्रपञ्च मिथ्यात्व साधना चाहिए। इसलिए यहाँ पर अनुमान का प्रतिपादन किया जा रहा है। श्रुति के द्वारा प्रपञ्च का मिथ्यात्व तो कहा ही जा चुका है फिर भी कुछ लोग आगम प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं, लेकिन अनुमान प्रमाण को स्वीकार करते है उनके के लिए प्रपञ्च का मिथ्यात्व प्रतिपादन करने के लिए यहाँ पर अनुमान का प्रतिपादन किया जा रहा है।

अनुमितिकरण ही अनुमान कहलाता है जो स्वार्थ तथा परार्थ के भेद से दो प्रकार का होता है। प्राय: नैयायिक अनुमान में रत होते हैं। तथा उनके मत के साथ वेदान्तियों का विरोध इस प्रकार से दोनों हेतु भी अनुमान प्रक्रिया ज्ञान के लिए इष्ट है। यहाँ पर इस पाठ में पहला न्याय सम्मत स्वार्थानुमानक्रम प्रदर्शित किया जा रहा है। इसके बाद वेदान्त सम्मत अनुमानक्रम प्रतिपादित किया जा रहा है।

अनुमिति करण अनुमान तभी ही जाना जा सकता है जब अनुमिति का ज्ञान हो। इसलिए सर्वप्रथम अनुमिति क्या है यह विषय प्रतिपादित किया जाएगा। इसके बाद परार्थानुमान प्रदर्शित किया जाएगा। अनुमान का हृदय ही व्याप्ति है। इसलिए व्याप्ति विषय का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया जाएगा। उसके बाद सद्हेतुओं को बताकर जगत् का मिथ्यात्व प्रतिपादित किया जाएगा। वहाँ पर भी मिथ्यात्व लक्षण के बिना जगत् का मिथ्यात्व नहीं जाना जा सकता इस हेतु के मिथ्यात्व लक्षण का भी परिष्कार किया जाएगा।

अनुमान के बाद में उपमान प्रमाण भी इस पाठ में प्रतिपादित किया जाएगा। सादृश्य के ज्ञान के बिना उपमान प्रमाण सही प्रकार से नहीं जाना जा सकता है इसलिए सर्वप्रथम सादृश्य का प्रतिपादन किया जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

ध्यान दें:

- न्याय सम्मत अनुमान क्रम को जान पाने में;
- वेदान्त सम्मत अनुमानक्रम को जानकर अनुमान करनें में;
- दोनों दर्शनों के मत में भेद को समझ पाने में;
- स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान को समझ पाने में;
- व्याप्ति का ज्ञान जानने में;
- सद् हेतु का ज्ञान जान पाने में;
- मिथ्यात्व के लक्षण को जानकर जगत का मिथ्यात्व किस प्रकार से है यह जानने में;
- सादृश्य को जानकर उपमान को जानने में;

8.1) स्वार्थानुमान

अनुमितिकरण ही अनुमान होता है। अनुमिति व्याप्ति के ज्ञान से व्याप्तिज्ञान जन्या होती है। स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान भेद से अनुमान दो प्रकार के होते हैं।

उसमें सबसे पहले स्वार्थानुमान क्या है इसका उपस्थापन किया जाएगा।

अनुमान क्रम के विषय में नैयायिक तथा वेदान्तियों में मतभेद है। इसलिए सबसे नैयायिक सम्मत अनुमान को प्रदर्शित किया जा रहा है।

न्यायसम्मत स्वार्थानुमानक्रम

स्वयं अनुमाता के अर्थ प्रयोजन साध्य संशय निवृत्ति रूप जिससे हो वह स्वार्थानुमान होता है। उसी का क्रम स्वार्थानुमान क्रम होता है। संसार में व्यवहार के रूप में जहाँ जहाँ धुआँ होता है वहाँ वहाँ आग का सहचर्य दर्शन होता है। इस प्रकार से व्यभिचार का अदर्शन होता है। तथा धुआँ वह्निवाप्य है इस प्रकार का व्याप्ति विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। धुआँ यहाँ व्याप्य है तथा वह्नि व्यापक है। वह्नि व्याप्ति धुएं में है। इसलिए धुआँ लिङ्ग तथा हेतु कहा जाता है। इस व्याप्ति ज्ञान में लिङ्ग विषय होता है इसलिए यह ज्ञान प्रथमलिङ्गपरामर्श भी कहा जाता है।

जिस व्यक्ति को धुआँ वह्निवाप्य है इस प्रकार का अनुभव है कभी पर्वत के पास जाता है। तब पर्वत में अवच्छिन्न धूमरेखा को देखता है तब धूमवान पर्वत इस प्रकार का ज्ञान होता है, तथा यह ही पक्षधर्मता का ज्ञान होता है। यह ज्ञान ही द्वितीय लिङ्ग परामर्श कहा जाता है। वहाँ पर्वत के दिखाई देने वाले भाग में कही भी आग नहीं दिखाई देती है। तब संशय यह होता है कि पर्वत वह्निमान हैं या नहीं। अर्थात् पर्वत में आग का सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इसलिए पर्वत पक्ष कहा जाता है। धुएँ के दर्शन से उसकी स्मृति जन्म लेती है कि जहाँ जहाँ धुआँ होता है वहाँ वहाँ आग होती है अर्थात् धुआँ अग्निव्याप्य होता है। उस प्रकार का धूमवान् पर्वत अर्थात् वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वत इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञान ही परामर्श कहलाता है। यह परामर्श तीसरा लिङ्गपरामर्श कहलाता है। वहाँ से पर्वत वह्निमान है इस प्रकार का ज्ञान उदय होता है। यह ज्ञान ही अनुमिति कहलाता है।

पर्वत वह्निमान है धुएँ के कारण इस वाक्य से पर्वतवह्निमान है यह अनुमान उत्पन्न होता है। अनुमान मे पर्वत का उद्देश्य आग का विधान करता है। अत: पर्वत उद्देश्य तथा वह्नि विधेय होता है। अनुमान ही उद्देश्य का पक्ष होता है अनुमान में विधेय साध्य तथा धुआँ और लिङ्ग हेतु होता है।

पर्वत वह्निमान है धुएँ के कारण, जैसे रसोई इत्यादि अनुमान प्रयोग स्थल में पर्वतपक्ष होता है,

ध्यान दें:

वह्नि साध्य है, धुआँ हेतु है, इस प्रकार से यह रसोई घर यहाँ पर दृष्टान्त है। तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं व्यापारलक्षणम्। यहाँ पर तत् पद से व्याप्ति को ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार से यहाँ परव्याप्तिजन्य परामर्श, परामर्शजन्य अनुमिति है। इस प्रकार से परामर्श में व्याप्ति क्षान जन्यत्व और व्याप्तिज्ञानजन्य अनुमिति जनकत्व होता है। इसलिए परामर्श व्यापार होता है। व्याप्तिज्ञान असाधारण कारण होता है। इसलिए व्यापारवान् असाधारण कारण जो व्याप्तिज्ञान है वह अनुमिति के प्रति करण होता है। इस प्रकार से व्याप्तिज्ञान तथा अनुमितिकरण अनुमान होता है। अनुमिति का करण अनुमान प्रमाण को समझना चाहिए। इसलिए व्याप्तिज्ञान ही अनुमान प्रमाण होता है। यह न्याय मत से स्वार्थानुमान होता है।

जिस क्रम से अनुमान का जन्म होता है वह क्रम नीचे संक्षेप दिया जा रहा है।

1.	साहचर्यानुभव	जहाँ-जहाँ हेतु है वहाँ-वहाँ साध्य है। जहाँ-जहाँ धुआँ है वहाँ-वहाँ अग्नि है।
2.	व्याप्तेरनुभव	साध्य व्याप्य हेतु होता है। वह्निवाप्य धुआँ होता है।
3.	पक्षधर्मताज्ञानम्	हेतुमान् पक्ष होता है, तथा धूमवान् पर्वत होता है।
4.	व्याप्तिस्मरणम्	साध्य व्याप्य हेतु होता है तथा वह्निव्याप्य धुआँ होता है।
5.	परामर्श:	साध्य व्याप्य हेतु मान पक्ष होता है तथा वह्निवाप्य धूमवान पर्वत होता है।
6.	अनुमिति:	पक्ष साध्यवान होता है तथा पर्वत वह्निमान होता है।

वेदान्तसम्मत स्वार्थानुमानक्रम

जगत में जहाँ-जहाँ धुआँ होता है, वहाँ-वहाँ सहचर्य का दर्शन होता है। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ वह्नि का अभाव होता है। वहाँ-वहाँ धुएँ का भी अभाव होता है। इससे व्यतिरेक सहचर्य का दर्शन होता है। तब धुआँ वह्नि व्याप्य होता है। इससे व्याप्ति विषयक प्रत्यक्ष अनुभव उत्पन्न होता है। यह व्याप्ति अनुभव ही व्याप्तिज्ञान के नाम से प्रसिद्ध होता है। यह प्रथमलिङ्गपरामर्श कहलाता है।

धुआँ अग्नि व्याप्य होता है, इसलिए व्याप्ति अनुभववान् व्यक्ति कभी पर्वत के समीप जाता है। वहाँ धूमवान पर्वत इस प्रकार से धुएँ का ज्ञान उसको हो जाता है। यह ज्ञान ही पक्षधर्मता ज्ञान कहलाता है। अनुमान के प्रति यह ज्ञान एक कारण होता है। यह ज्ञान द्वितीय लिङ्ग परामर्श कहलाता है। वहाँ पर दिखाई देने वाले भाग में कही भी आग को नहीं देखकर मन में यह संशय होता है कि पर्वत अग्नि से युक्त है या नहीं। इसलिए पर्वत पक्ष कहा जाता है। धुएँ के दर्शन से उसका व्याप्ति संस्कार उद्बुद्ध होता है। वहाँ से पर्वत अग्नि से युक्त है, इससे अग्नि निश्चय उत्पन्न होता है। यह ज्ञान ही अनुमान कहलाता है।

पर्वत वह्निमान है धुएँ से जैसे रसोई घर यह भी अनुमान का प्रयोग स्थल है। यहाँ व्याप्ति के अनुभवजन्य व्याप्ति संस्कार उद्बुद्ध होते हुए अनुमिति का जन्म होता है। इस प्रकार से व्याप्तिज्ञानजन्यत्व तथा व्याप्ति ज्ञानजन्य अनुमिति जनकत्व उद्बुद्ध में तथा व्याप्ति संस्कार में आ जाते हैं। इसलिए उद्बुद्ध व्याप्ति संस्कार व्यापार होता है। व्याप्ति ज्ञान असाधारण कारण होता है। इसलिए व्यापारवान् असाधारण कारण जो व्याप्तिज्ञान वह अनुमिति के प्रति कारण होता है। इस प्रकार से व्याप्ति ज्ञान अनुमिति करण अनुमान होता है। अनुमिति का करण ही अनुमान प्रमाण समझा जाता है। इसलिए व्याप्ति ज्ञान ही अनुमान प्रमाण कहलाता है, यह वेदान्तमत के द्वारा स्वार्थानुमान है।

न्यायमत में पक्षधर्मता ज्ञान से व्याप्ति स्मृति होती है। उससे साध्य व्याप्य हेतु मान पक्ष यह परामर्श

पाठ-8

अनुमानखण्ड और उपमानखण्ड

ध्यान दें:

उत्पन्न होता है। उससे अनुमान उत्पन्न होता है।

वेदान्त मत में पक्षधर्मताज्ञान से व्याप्तिसंस्कार उत्पन्न होता है। उससे अनुमान उत्पन्न होता है। व्याप्ति स्मृति तथा साध्य व्याप्य हेतु मान पक्ष इस प्रकार से दो रूपों में परामर्श उत्पन्न नहीं होता है।

वेदान्त मत में जिस क्रम से स्वार्थ अनुमिति उत्पन्न होती है वह क्रम नीचे संक्षेप में प्रकटित है।

7. साहचर्यानुभव: जहाँ-जहाँ हेतु है वहाँ-वहाँ साध्य है, जहाँ-जहाँ धुआँ है वहाँ-वहाँ आग है।
8. व्याप्तेरनुभव: साध्यव्याप्य हेतु होता है तथा वह्निव्याप्य धुआँ होता है।
9. पक्षधर्मताज्ञानम् हेतुमान पक्ष होता है तथा धूमवान पर्वत होता है
10. अनुमिति: पक्ष साध्यवान होता है तथा पर्वत वह्निमान होता है।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. अनुमिति किसे कहते हैं?
2. अनुमान के भेदों को लिखिए।
3. न्याय के मत में पर्वत वह्निमान होता है धुएँ से यहाँ पर अनुमिति का आकार क्या है?
4. प्रथमलिङ्ग परामर्श किसे कहते हैं?
5. द्वितीयलिङ्ग परामर्श किसे कहते हैं?
6. अनुमिति के जनन में व्याप्तिज्ञान का व्यापार क्या होता है?

अनुमिति

अनुमिति करण ही अनुमान होता है। जब तक अनुमिति क्या है इसका ज्ञान नहीं होता है तब तक अनुमान क्या होता है इसको भी समझा नहीं जाता है। इसलिए अनुमिति क्या है इसका प्रतिपादन किया जा रहा है।

व्याप्ति ज्ञानत्व ही व्याप्ति ज्ञान जन्या अनुमिति है ऐसा पूर्व में कहा जा चुका है।

वह इस प्रकार से है जैसे चैत्र देवदत्त का पुत्र है। चैत्र गुरुकुल का छात्र है। चैत्र मगध का नागरिक है। इस प्रकार से चैत्र में चैत्रत्व पुत्रत्व छात्रत्व तथा नागरित्व इस प्रकार से विविध धर्म है। लेकिन चैत्र छात्रत्व वशात् ही गुरुकुल में पढ़ सकता है न की देवदत्तपुत्र वशात्। चैत्र में मागधत्व भी है इसलिए वह मगध देश में रहा सकता है, व्यवहार कर सकता है, न की छात्रत्व के कारण। इस एक ही चैत्र उसके धर्मवश ही उस कार्य को करने में समर्थ होता है।

व्याप्ति ज्ञान के विभिन्न धर्मवश विभिन्न कार्यों को जन्मदेता है। वहाँ पर व्याप्ति ज्ञान धर्म वश से व्याप्तिज्ञान अनुमिति का जन्म होता है। इसका ही नीचे सविस्तारपूर्वक उपस्थापन किया जाएगा

व्याप्ति ज्ञान से व्याप्ति ज्ञान, अनुव्यवसाय, व्याप्ति विषयक स्मृति, व्याप्ति ज्ञानध्वंस तथा अनुमिति उत्पन्न होते है। व्याप्ति ज्ञान जनक तथा अनुव्यवसाय जन्य होते हैं। व्याप्ति ज्ञान में जनकता तथा अनुव्यवसायादि में जन्यता होती है। यदि जनक भिन्न भिन्न होता है तब जनकता भी भिन्न भिन्न होती है। परन्तु अकेला व्याप्ति ज्ञान ही जनक होता है। इसलिए व्याप्ति ज्ञान में एक ही जनकता होती है। यदि

ध्यान दें:

जन्य विभिन्न होता है तो जनकता भी विभिन्न होती है। अनुव्यवसाय स्मृति,ध्वंस तथा अनुमिति ये चार कार्य जन्य कहलाते है। अत: उनमें विद्यमान जन्यता भिन्न ही होती है न की अकेली। इस प्रकार से व्याप्ति ज्ञान में जनकता है इसलिए व्याप्ति ज्ञानानुव्यसाय में व्याप्ति स्मृति में व्याप्ति ज्ञानध्वंस में तथा अनुमिति में भी जन्यता होती है। इस प्रकार से जनकता जन्यता की निरूपिका है। व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जो जनकता है उसकी निरूपिता जन्यता अनुव्यवसाय में स्मृति में ध्वंस में तथा अनुमिति में होती है। इसलिए व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावान् अनुव्यवसाय होता है। व्याप्ति ज्ञाननिष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावती स्मृति होती है।

व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावान् ध्वंस होता है।

व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावती अनुमिति होती है।

व्याप्ति ज्ञान तो अनुभव कहलाता है। तथा प्रथमानुभव व्यवसाय कहलाता है। व्याप्तिज्ञानवान मैं इससे व्याप्तिज्ञानविषयक अनुव्यवसाय उत्पन्न होता है। उस व्यवसाय में व्याप्तिज्ञान विषय होता है। व्याप्तिज्ञान विषय होता है इसलिए अनुव्यवसाय उत्पन्न होता है। अर्थात् व्याप्तिविषयत्व अनुव्यवसाय के प्रति जनक होता है।

व्याप्ति ज्ञान अनुभव है। उसमें विषय व्याप्ति होती है जब व्याप्ति स्मृति होती है तब स्मृति का विषय भी व्याप्ति ही होती है। अनुभव जो विषय है वह ही स्मृति का भी विषय है, यदि अनुभव विषय स्मृति विषय से भिन्न है तो स्मृति के प्रति वह अनुभव कारण नहीं होता है। यदि घटानुभव नहीं हो तो घटस्मृति भी नहीं होनी चाहिए। व्याप्ति स्मृति का जो विषय है वह ही व्याप्ति ज्ञानात्मक अनुभव का भी विषय है। इसलिए व्याप्तिज्ञानात्मक अनुभव स्मृति के प्रति जनक होता है। इसी प्रकार व्याप्ति ज्ञान भी व्याप्ति विषयक अनुभवत्व के रूप में व्याप्तिस्मृति के प्रति जनक होता है।

व्याप्तिज्ञान व्याप्तिज्ञानत्व के द्वारा अनुमिति के प्रति कारण होता है। व्याप्तिज्ञान प्रतिध्वंस के प्रति प्रतियोगित्व रूप से कारण होता है। अर्थात् व्याप्तिज्ञान प्रतियोगी होता है इसलिए उसका ध्वंस होता है। ध्वंस के प्रति प्रतियोगी की कारणता ही नियम कहलाती है।

जिस रूप के द्वारा व्याप्तिज्ञान जनक होता है उस रूप के द्वारा व्याप्तिज्ञाननिष्ठजनकता का अवच्छेदक व्यावर्तक अथवा भेदक होता है। इसलिए व्याप्ति ज्ञाननिष्ठ जनकता के अवच्छेदक चारों धर्म होते हैं। जनकता भी चारों धर्मों के द्वारा अवच्छिन्न होती है। इस प्रकार व्याप्तिज्ञान में विषयत्व अवच्छिन्न जनकता होती है, अनुभवत्व अवच्छिन्न जनकता, व्याप्तिज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकता, प्रतियोगित्व अवच्छिन्न जनकता इस प्रकार से ये चार जनकता होती है। उसी प्रकार की जनकता चतुष्टय निरूपिता जन्यता भी चार ही होती है। वे है विषयत्व अवच्छिन्न जनकता निरूपिता जन्यता। अनुभवत्व अवच्छिन्न जनकता निरूपिता जन्यता। व्याप्तिज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकता निरूपिता जन्यता और प्रतियोगित्व अवच्छिन्न जनकता निरूपिता जन्यता।

व्याप्ति ज्ञान जन्य अनुव्यवसाय निष्ठ जन्यता के प्रति व्याप्ति ज्ञान निष्ठ विषयत्व अवच्छिन्नजनकता प्रयोजिका होती है।

व्याप्ति ज्ञान जन्या जो स्मृति होती है तन्निष्ठजन्यता के प्रति व्याप्ति ज्ञाननिष्ठ अनुभवत्व अवच्छिन्न जनकता प्रयोजिका होती है।

व्याप्ति ज्ञान जन्य अनुमिति निष्ठ जन्यता के प्रति व्याप्ति ज्ञान निष्ठा व्याप्ति ज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकता से युक्ति प्रयोजिका होती है।

पाठ-8

अनुमानखण्ड और उपमानखण्ड

ध्यान दें:

व्याप्ति ज्ञान जन्य ध्वंस निष्ठ जन्यता के प्रति व्याप्ति ज्ञान निष्ठ प्रतियोगत्व अवच्छिन्न जनकता प्रयोजिका होती है। इस प्रकार से व्याप्ति ज्ञान जन्या जो व्याप्ति स्मृति होती है, तन्निष्ठजन्यता के प्रति केवल व्याप्तिज्ञाननिष्ठा अनुभवत्व अवच्छिन्न जनकता ही प्रयोजिका होती है।

इस प्रकार से व्याप्ति ज्ञान जन्या जो व्याप्ति स्मृति होती है तन्निष्ठ जन्यता के प्रति केवल व्याप्ति ज्ञान निष्ठा अनुभवत्व अवच्छिन्न जनकता ही प्रयोजिका है। इसलिए अनुभवत्व अवच्छिन्न जनक निरूपिता जन्यता केवल व्याप्तिस्मृति मैं ही होती है, न की अनुव्यवसाय में, न अनुमिति में और न ही ध्वंस में।

वैसे ही व्याप्तिज्ञानजन्या जो अनुमिति होती है वह तन्निष्ठजन्यता के प्रति केवल व्याप्तिज्ञाननिष्ठा व्याप्तिज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकता ही प्रयोजिका होती है। इसलिए व्याप्तिज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकता निरूपित जन्यता केवल अनुमिति में ही होते हैं। न अनुव्यवसाय में, न स्मृति में, न ही ध्वंस में।

जिस कार्य के प्रति जो वस्तु जिस रूप से अर्थात् जिस धर्म से विशिष्ट होती हुई जनक होती है। तद्वस्तुनिष्ठा तथा तद्धर्मावच्छिन्ना जो जनकता होती है उस से निरूपित जन्यता भी उसी कार्य में रुकती है, यह, नियम है।

अनुमिति के प्रति व्याप्ति ज्ञान व्याप्ति ज्ञानत्वरूप से अर्थात् व्याप्तिज्ञानत्व विशिष्ट सत् ही जनक होता है। व्याप्ति ज्ञान निष्ठा व्याप्ति ज्ञानत्व अवच्छिन्न जो जनकता है उससे निरूपित जन्यता अनुमिति में ही रूकती है। अन्यत्र नहीं रूकती है।

इसलिए व्याप्ति ज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकता निरूपित जन्यतावद् ज्ञान अनुमिति होता है। और कहा गया है-

व्याप्तिज्ञानत्वावच्छिन-जनकता निरूपित-जन्यतावज्ज्ञानत्वं हि अनुमितेः लक्षणम्।

अनुमिति लक्षण का दलकृत्य

उपरोक्त लक्षण का दलकृत्य नीचे से प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि ज्ञानत्व ही अभी तक मात्र अनुमिति का लक्षण है तो ब्रह्म में ज्ञान होने से ब्रह्म में अतिव्याप्ति होती है। "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" ये श्रुति वचन है। इसके वारण के लिए जन्यतावज्ज्ञानत्वम् इस प्रकार का अनुमिति का लक्षण किया जाता है। जिससे अतिव्याप्ति नहीं होती है। ब्रह्मज्ञानस्वरूप ही होता है जन्य नहीं होता है, यहाँ पर अति व्याप्ति नहीं है।

यदि जन्यतावज्ज्ञानत्व इतना मात्र लक्षण करें तो जन्यप्रत्यक्ष ज्ञान में जन्यतावज्ज्ञानत्वात् अतिव्याप्ति होती है, उसके वारण के लिए व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जनकता निरूपित-जन्यतावज्ज्ञानत्व अनुमिति का लक्षण करना चाहिए। भले ही प्रत्यक्ष ज्ञान में जन्यतावज्ज्ञानत्व है फिर भी वह तो इन्द्रिय निष्ठजनकता निरूपित जन्यतावज्ज्ञात्व है। न की व्याप्ति निष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावज्ज्ञानत्व। इसलिए अतिव्याप्ति नहीं है।

व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावज्ज्ञानत्व यदि अनुमिति का लक्षण करे तो अनुव्यवसाय व्याप्तिस्मृति में अतिव्याप्ति होती है। अनुव्यवसाय तथा व्याप्तिस्मृति व्याप्तिज्ञान से उत्पन्न होते हैं। अतः उन दोनों का व्याप्ति ज्ञान निष्ठ जनकता निरूपित जन्यतावज्ज्ञानत्व है। इसलिए अतिव्याप्ति है उसके वारण के लिए व्याप्ति ज्ञानत्वावच्छिन-जनकतानिरूपित-जन्यतावज्ज्ञानत्वम्. ये अनुमिति का लक्षण करना चाहिए। उससे अतिव्याप्ति नहीं होती है। उसी प्रकार अनुमिति के प्रतिव्याप्ति ज्ञान तथा व्याप्ति ज्ञानत्व रूप से व्याप्ति ज्ञानत्व विशिष्ट सत् जनक होता है। व्याप्ति ज्ञान निष्ठा व्याप्ति ज्ञानत्व अवच्छिन्न जो जनकता उससे निरूपित जन्यता अनुमिति में ही रुकते हैं न की अनुव्यवसाय में और न व्याप्ति स्मृति में। इसलिए व्याप्तिज्ञानत्व अवच्छिन्न जनकतानिरूपि जन्यतावज्ज्ञानत्व का अनुव्यवसाय में तथा व्याप्ति

ध्यान दें:

स्मृति में अभाव के कारण अतिव्याप्ति नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 8.2

1. स्वध्वंश के प्रति व्याप्तिज्ञान किस रूप से कारण होता है?
2. अनुमिति के प्रति व्याप्तिज्ञान किस रूप से कारण होता है?
3. व्याप्ति स्मृति के प्रति व्याप्तिज्ञान किस रूप से कारण होता है
4. व्याप्तिज्ञानत्व अवच्छिन्न व्याप्तिज्ञाननिष्ठा जो जनकता होती है उससे निरूपित जन्यता किसमें होती है?
5. अनुमिति का निष्कृष्ट लक्षण क्या है?

8.3) परार्थानुमान

पर्वतवह्निमान है जिसक यह निश्चय है। उसके कोई अपर प्रतिवादी यदि पर्वत में आग है इस प्रकार से सन्देह करता हुआ पूछता है तो पर्वत पर आग है या नहीं। अब निश्चयवान जन सन्देह करने वाले के संशय को निवारण के लिए अवयव वाक्यों के प्रयोग से अनुमान प्रमाण प्रदर्शित करता है। यह परार्थानुमान कहलाता है। पर का अर्थ है प्रयोजन साध्य संशय की निवृत्तिरूप परार्थानुमान। इस परार्थानुमान के द्वारा प्रतिवादि की संशय निवृति होती है। तथा साध्यनिश्चय भी उत्पन्न होता है। यह निश्चय ही परार्थानुमिति कहलाता है। परार्थानुमिति के जनन के लिए एक वाक्य का प्रयोग होता है उसके क्रम से अवयव यहाँ पर दिये जा रहे हैं।

परार्थानुमान क्रम

जिसका साध्यनिश्चयात्मक होता है वह अपर जिसका साध्य संशय होता है। उसके प्रति क्रम से वाक्य कहता है जैसे-

पर्वत आग से युक्त है- यह पहला अवयव है इसलिए यह प्रतिज्ञा कहलाता है। इस वाक्य से साध्य क्या है इसका ज्ञान होता है। जैसे वह्निसाध्य है यह जाना जाता है। और सन्दिग्धसाध्यवान् पर्वत होता है यह ज्ञान भी उत्पन्न होता है। सन्दिग्ध साध्य का आश्रय ही पक्ष कहलाता है।इसलिए प्रतिक्षा वाक्य से पक्षज्ञान भी उत्पन्न होता है। पक्षज्ञान के बिना पक्षधर्मता का ज्ञान सम्भव नहीं होता है। इसलिए पक्षज्ञान पक्षधर्मता ज्ञान का प्रयोजक होता है।

प्रतिज्ञा को सुनकर के प्रतिवादी जिज्ञासा करता है कि जो पर्वत वह्निमान है वह कैसे है। अर्थात् तुम किस कारण से पर्वत को वह्निमान कहते हो। तब वादी जिज्ञासु के प्रति द्वितीय अवयव को कहता है धूमत्वाद् (धुएँ के कारण)। यह पञ्चम्यन्त पद है, स्वार्थानुमान में धूमत्व ही हेतु होता है। लेकिन परार्थानुमान में पर धुएँ को नहीं देखता है। अत: धुएँ के दर्शन से आग का प्रतिपादन नहीं होता है, वह तो धूमत्वाद् इस पञ्चम्यन्तपद के श्रवण से अग्नि का प्रतिपादन होता है। इसलिए पञ्चम्यन्त पद ही हेतु होता है। इसके द्वारा ही प्रतिवादी को ज्ञान होता हैं कि पर्वत धूमवान है। इसलिए इस पद के ज्ञान को पक्षधर्मता ज्ञान भी कहते हैं पञ्चम्यन्त वाक्य हेतु कहलाता है। इसलिए इस क्रम से द्वितीय अवयव ही हेतु होता है।

अब अगर जिज्ञासु कहता है कि मान भी लिया कि धुआँ पर्वत पर है। पर उससे क्या। धुआँ पर्वत

पाठ-8

अनुमानखण्ड और उपमानखण्ड

ध्यान दें:

पर है तो होने दो। लेकिन उस पर्वत पर अग्नि है इसका अनुमान कैसे किया जाए? तब उस जिज्ञासु के प्रति तृतीय अवयव प्रस्तुत किया जाता है। जहाँ जहाँ धुआँ होता है वहाँ वहाँ आग होती है। फिर भी प्रतिवादी जिज्ञासा करता हैं कि यह कहाँ देखा गया है? तब उसको बताता है कि जैसे रसोई घर में, इस प्रकार से। तब संपूर्ण वाक्य होता है,यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः यथा महानसम्। अर्थात् जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ वहाँ आग होती है, इस वाक्य के द्वारा श्रोता का वह्निव्याप्य धुआँ, इस प्रकार का व्याप्तिसंस्कार उद्‌बुद्ध होता है। यह तृतीय अवयव उदाहरण कहलाता है। इस प्रकार से प्रतिज्ञा हेतु तथा उदाहरण इस क्रम से अवयवों का प्रयोग किया जाता है तो प्रतिवादी को क्रमशः पक्षज्ञान पक्ष धर्मताज्ञान तथा व्याप्तिसंस्कार का उद्‌बोध होता है। उससे पर्वत वह्निमान है यह निश्यचय उत्पन्न होता है। यह ज्ञान अनुमिति कहलाता है। पर की यह अनुमिति वह परार्थानुमिति कहलाती है। उसके प्रति करण परार्थानुमान कहलाता है। तीनों अवयवों का समुदाय न्याय कहलाता है। न्याय के द्वारा जो अनुमान उत्पन्न होता है वह न्याय प्रयोज्यानुमान तथा परार्थानुमान कहलाता है। इस प्रकार से न्याय से जो अनुमान उत्पन्न नहीं होता है वह न्यायप्रयोज्य अनुमान स्वार्थानुमान कहलाता है।

संक्षेप से परार्थानुमान का क्रम इस प्रकार से है-

प्रतिज्ञा- पर्वत वह्निमान है

हेतु- धुएँ के कारण

उदाहरण- जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ-वहाँ आग होती है। जैसे रसोई घर में।

प्रतिज्ञा हेतु तथा उदाहरण इन तीनों अवयवों के द्वारा परार्थानुमिति सम्भव होती है। अथवा उदाहरण उपनय तथा निगमन इन तीनों अवयवों के द्वारा परार्थानुमिति सम्भव होती है।

वे अवयव है।

उदाहरण जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ-वहाँ आग होती है जैसे रसोई घर में।

उपनय यह पर्वत धूमवान है।

निगमन पर्वत आगवान है

अनुमिति में किस अंश का अनुमितित्व होता है।

पर्वत वह्निमान है धूम के कारण इत्यादि अनुमान स्थल होते है। वहाँ पर्वत वह्निमान है यह अनुमान उत्पन्न होता है। अनुमिति परोक्षज्ञान को कहते हैं, न की प्रत्यक्ष ज्ञान को। यहाँ पर्वतविशेष्यत्व से तथा आग प्रकारत्व से तथा उन दोनों का सम्बन्ध संसर्गत्व से भासित होता है। पर्वत का इन्द्रिय के साथ सन्निकर्ष होता है, वह्नि का नहीं होता है। वृत्ति का बाहर जाने का हेतु इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष होता है। वह सन्निकर्ष पर्वत के साथ है,वह्नि के साथ नहीं होता है। इसलिए पर्वताकार वृत्ति होती है। वह्नियाकार नहीं होती है। विषय ही पर्वत होता है तथा वह ही उपाधि कहलाता है। वृत्ति भी उपाधि होती है, इस प्रकार दोनों उपाधि एकदेश में होती है। इसलिए इनका उपधेय चेतन्य से अभेद होता है। लेकिन वह्निस्थल में एकदेशत्व नहीं है। अतः पर्वतवह्निमान है इस स्थल में पर्वत विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है, वह्निविषय में परोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। पर्वत वह्निमान है यह अनुमान तो पर्वतविशेष्यकृत वह्निप्र कारक ज्ञान ही होता है। अनुमिति का वह्निप्रकारकांश ही व्याप्तिजन्यज्ञान होता है। इसलिए उस अंश में अनुमितित्व है। पर्वतविशेष्यकांश इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य होता है न कि व्याप्तिजन्य। इसलिए पर्वतविशेष्यकांश में अनुमितित्व नहीं होता है। अतः वह्निप्रकारक पर्वतविशेष्यक अनुमिति का सर्वांश में व्याप्तिज्ञानजन्यज्ञानत्व नहीं होता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न 8.3

1. परार्थानुमान में परार्थ किसे कहते हैं?
2. वेदान्तियों के परार्थानुमान में कितने अवयव होते हैं?
3. पर्वत वह्निमान है धुएँ के कारण यहाँ पर किस अंश में अनुमितित्व होता है।

8.4 व्याप्ति

व्याप्तिज्ञान के लिए कुछ पारिभाषिक शब्दों के परिचय से सरलता हो इसलिए उनको यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

जिस भूतल में घट होता है वहाँ पट भी होता है तो घट के साथ समान एक ही अधिकरण जिसका होता है वह घटसमानाधिकरण पट होता है। अथवा जो रुकता है वह पट होता है। समानाधिकरण्य ही एकाधिकरणवृतित्व वाला होता है। समानाधिकरण इसका अर्थ है स्वाधिकरण में वर्तमान। घट तथा पट भूतल में होते है। तब निम्नप्रकार से वाक्यों का प्रयोग कर सकते है।

1. घटसमानाधिकरण पट है (अर्थात् घटाधिकरणवृत्ति ही पट है)
2. घटसमानाधिकरण्य पट में होता है।
3. पटसमानाधिकरण घट होता है।
4. पटसमानाधिकरण्य घट में होता है।

व्याप्तिलक्षण अन्त में समग्ररूप से उपस्थापित है। प्रारम्भ में छोटे छोटे लक्षण करके दोषादि को उद्घाटित करके उनका संशोधन किया गया है। इसलिए परिनिष्ठित लक्षण किस कारण से दीर्घ हैं तथा प्रत्येक दलों की क्या आवश्यक्ता है। उसको यहाँ पर प्रकट किया जा रहा है।

साध्य के अधिकरण में जो होता है वह साध्यसमानाधिकरण कहलता है तथा उस साध्यसमानाधि करण में जो होता है उसे साध्यसमानाधिकरण्य कहते है। साध्यसमानाधिकरण्य ही व्याप्ति का लक्षण है। पर्वतवह्निमान है धुएँ के कारण यहाँ स्थल में पर्वत है, साध्य वह्नि है, तथा हेतु धूम होता है। इसलिए धूम मे वह्निसमानाधिकरण्य होता है। इसलिए यहाँ पर साध्यसमानाधिकरण व्याप्ति कही गयी है। व्याप्ति धूम में होती है। जिस हेतु में व्याप्ति होती है तथा जो हेतु के पक्ष में रुकती है वह हेतु सद्हेतु कहलाता है। जिसमें व्याप्ति रूकती है वह व्याप्य होता है इसलिए धुआँ वह्निव्याप्य होता है।

अब कहते हैं कि तप्त लोहे के गोले में आग रूकती है लेकिन धुआँ नहीं होता है। इसलिए वह्निसमानाधिकरण धुआँ नहीं होता है और वह्निसमानाधिकरण्य में भी धुआँ नहीं होता है। अतः धूम में लक्षणगमनभावा से अव्याप्ति होती है। उसके निवारण के लिए साधनाश्रयाश्रित- साध्यसामानाधिकरण्य व्याप्ति लक्षण करना चाहिए, साधन यहाँ पर हेतु तथा लिङ्ग होता है। साधन का आश्रय ही साधनाश्रय कहलाता है। साधानाश्रय में आश्रित साधनाश्रित कहलाता है। साधनाश्रयाश्रित जो साध्य है वह साधनाश्रयाश्रितसाध्य होता है। उस प्रकार का साध्यसमानाधिकरण्य व्याप्ति होता है। इस प्रकार का लक्षण करने पर उक्त स्थल में अतिव्याप्ति नहीं होती है। लोहे के गोले में धुआँ नहीं होती है इसलिए वह गोलक धूमात्मकसाधनाश्रय होता है। लेकिन रसोई घर आदि धुएँ के आश्रयित होती है। लोहे में विद्यमान आग किसी साधन पर आश्रित नहीं होती है तथा महानस(रसोई घर) आदि में विद्यमान आग साधन पर आश्रित

ध्यान दें:

होती है। इस प्रकार से धूमाश्रयाश्रितवह्निसमानाधिकरण्य धुएँ में होता है, इसलिए यहाँ पर अव्याप्ति नहीं होती है। तथा धुएँ के आश्रय महानस आदि होते है। इसलिए आग के अधिकरण में महानस आदि में धुआँ होता ही है। इसलिए यह धुआँ साधनाश्रयाश्रित साध्यसमानाधिकरण कहलाता है। इस प्रकार से साधनाश्रयाश्रितसाध्यसमानाधिकरण्य होने से यहाँ पर अव्याप्ति नहीं होती है।

पर्वत धुआँ से युक्त है इस अनुमान स्थल में पर्वतपक्ष है तथा धुआँ साध्य है आग हेतु तथा साधन है। आग का आश्रय जैसे रसोई आदि तथा तप्त लोहे का गोलक आदि है। धुआँ लोहे के गोले में नहीं होता है। धुएँ के अभाव अधिकरण में वर्तमान आग साध्याभावाधिकरण में वर्तमान असिद्धहेतु होता है। इस प्रकार से आग असिद्ध हेतु है यह सिद्ध होता है। असिद्ध हेतु का लक्षण हो जाने पर अतिव्याप्ति नहीं होती है। यहाँ पर साधन वह्नि है तथा उसके आश्रय महानस आदि है। उसमें आश्रित धुआँ होता है उस धुएँ का समानाधिकरण्य वह्नि में होता है इसलिए साधन आश्रयाश्रित साध्यसामानाधिकरण्य आग में होता है। इसलिए अतिव्याप्ति होती है। उसके निवारण के लिए साधन का अशेषत्व तथा विशेषण का निवेश होना चाहिए। तब अशेषसाधनाश्रयाश्रितसाध्यसामानाधिकरण्य व्याप्तिलक्षण होता है। अशेष से तात्पर्य है यावत्साधनाश्रयाश्रितसाध्यसामानाधिकरण्य, उससे अतिव्याप्ति नहीं होती है। जो साध्य साधन के सभी आश्रयों में होता है वह ही यावत्साधानाश्रयाश्रित साध्य होता है। प्रकृति में साधन वह्नि होती है उसका उसका आश्रय लोहे का गोला होता है। उसमें धुआँ नहीं होता है। इसलिए धुआँ वह्नि के उन आश्रयों में नहीं होता है। अत: अशेषवह्न्याश्रयाश्रित धुआँ नहीं होता है। उसे अशेष वह्नि के आश्रय के आश्रित धुआँ सामानाधिकरण्य अग्नि में नहीं होता है इससे अतिव्याप्ति नहीं है। इसलिए अशेषसाधनाश्रयाश्रितसाध्यसामानाधिकरण्य व्याप्तिलक्षण कहलाता है। भले ही व्याप्तिलक्षण में अनेक दोष होते है। उनके समाधान के लिए महान प्रयास किया जाता है। लेकिन वह सभी भी प्रपञ्च उन्नत कक्षाओं जानना चाहिए।

व्याप्ति कैसे जानी जाती है। जगत में जहाँ-जहाँ धुआँ होता हैं वहाँ-वहाँ आग होती है। वहाँ सहचर्य का दर्शन होता है तथा व्यभिचार का अदर्शन होता है तब धुआँ वह्निवाप्य तथा व्याप्तिविषयक प्रत्यक्ष अनुभव उत्पन्न होता है। यह व्याप्ति का अनुभव होता है जो व्याप्ति नाम से प्रसिद्ध होता है। इसलिए व्याख्याता ही व्याप्ति कहलाती है।

सद हेतु

जिस में व्याप्ति है तथा जो हेतु पक्ष में होता है वह सद्हेतु कहा जाता है। हेतु ही लिङ्ग कहलाता है। लिङ्ग तथा अन्वय एक प्रकार के ही होते है।

पाठगत प्रश्न 8.4

1. 'घटसमानाधिकरण पट' इसका क्या अर्थ होता है?
2. परिष्कृत व्याप्ति का क्या लक्षण है?
3. सद् हेतु किसे कहते हैं?
4. लिङ्ग कितने प्रकार का होता है?

8.5) जगन्मिथ्यात्व

"यहाँ पर नाना प्रकार का कुछ भी नहीं है" इस प्रकार से बहुत प्रकार की श्रुतियों के द्वारा सिद्ध होता है कि जगत् मिथ्या है। फिर भी जो नास्तिकवादी होते हैं वे आगमप्रमाण्य को स्वीकार नहीं करते

ध्यान दें:

है लेकिन अनुमान को प्रमाणत्व के रूप में अङ्गीकार करते हैं। उनको भी समझाने के लिए अनुमान के द्वारा जगत का मिथ्यात्व सिद्ध किया जाता है। अद्वैतसाक्षात्कार में जगत का मिथ्यात्व अनुमान का मुख्य प्रयोजन होता है।

वह अनुमान है- ब्रह्मभिन्न सब मिथ्या है, ब्रह्म से भिन्न होने के कारण। जो जैसा वह वैसा ही है, जैसे शुक्ति के रूप में। यह अनुमान यहाँ मुख्य है। इस अनुमान का आधा मुख्य अनुमान होता है। इस रूप के द्वारा भी कुछ उल्लेख करेंगे। कुछ मिथ्यात्व अनुमान होता है इसका भी उल्लेख होगा। इस अनुमान में 'ब्रह्मभिन्नं सर्वम्' यह पक्ष होता है। मिथ्यात्व ही साध्य होता है। ब्रह्मभिन्नत्व ही हेतु होता है। दृष्टान्त में जहाँ जहाँ ब्रह्मभिन्नत्व है वहाँ-वहाँ मिथ्यात्व है यही इसका तात्पर्य है।

यदि सब ब्रह्म से भिन्न है ऐसा नहीं कहकर केवल सब मिथ्या है। इस प्रकार का ही पक्ष रखेंगे तो उसमें भी ब्रह्म अन्तर्निहित होता है। उसके द्वारा ब्रह्म में भी मिथ्यात्व की आपत्ति होती। इसलिए कहा गया है सब ब्रह्म से भिन्न है।

हेतु में साध्य की व्याप्ति है तो उस हेतु से अन्य जगह भी साध्य का अनुमान किया जा सकता है। जैसे धूम में यदि आग की व्याप्ति ग्रहण करते हैं तो अन्य जगह भी जहाँ धूम है वहा भी आग को साध सकते हैं। इस प्रकार से मिथ्यात्व की व्याप्ति भी ब्रह्म से भिन्न में ग्रहण करते हैं तो अन्य स्थान पर जहाँ ब्रह्म से भिन्नत्व है वहाँ पर भी मिथ्यात्व है इसका अनुमान किया जा सकता है। इसलिए यदि किसी भी प्रमाण से मिथ्यात्व व्याप्य तथा ब्रह्मभिन्नत्व इसका ज्ञान होता है तो वह परीक्षणीय है। वहाँ यह उदाहरण होता है शुक्ति में रजत। शुक्तिरजत ब्रह्म से भिन्न है यह स्पष्ट हो ही गया है। यदि शुक्तिरजत में मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता है तो दृष्टान्त सिद्धि यह दोष उत्पन्न हो जाता है शुक्ति में जो रजत भासित होता है। यदि सुक्तिरजत में मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता है तो दृष्टान्तसिद्धि दोष उत्पन्न होता है। शुक्ति में जो रजत भासित होता है वह शुक्ति रजत कहलाता है। दृष्टान्त में हेतु तथा साध्य में सहचार दर्शन से व्याप्ति निश्चय होता है। लेकिन यदि दृष्टान्त रजत में मिथ्यात्व नहीं हो तो व्याप्तिनिश्चय नहीं होता है। इसलिए रजत में मिथ्यात्व है इसप्रकार से विचार करना उत्तम होता है।

शुक्ति में रजत की कभी प्रतीति होती है। लेकिन यह शुक्ति ही रजत अधिष्ठान के प्रत्यक्षज्ञान से शुक्ति विषयक अज्ञान तथा अज्ञानकार्य रजत का निवारण होता है। तब रजत की उपलब्धि नहीं होती है। उसके पश्चात् इस अनुपलब्धि के द्वारा यहाँ रजत नहीं है इस प्रकार के रजत के अभाव का ज्ञान उत्पन्न होता है। उस रजत के द्वारा मिथ्यात्व सिद्ध होता है। इसलिए शुक्ति तथा रजत ब्रह्मभिन्नत्व से मिथ्या है इस दृष्टान्त की असिद्धि नहीं है। उससे मिथ्यात्वव्याप्य ब्रह्मभिन्नत्व यह ज्ञान उत्पन्न होता है। तथा अन्य जगह ब्रह्म के भिन्नत्वदर्शन से मिथ्यात्व का अनुमान करना चाहिए।

आक्षेप

प्रातिभासिक रजत में जैसे ब्रह्मभिन्नत्व है वैसे अविद्याजन्यत्व तथा दोषजन्यत्व भी होता है। क्योंकि प्रातिभासिक रजत का उपादान कारण ही अविद्या है। इस प्रकार चक्षु आदि के दोषवश ही रजत भासित होता है। इस प्रकार सभी प्रातिभासिक पदार्थों में अविद्याजन्यत्व तथा दोषजन्यत्व है तथा मिथ्याजन्यत्व भी है। यहाँ यदि कोई मिथ्यात्वव्याप्य ब्रह्मभिन्नत्व को नहीं जानता है,परन्तु मिथ्यात्वव्याप्य अविद्याजन्यत्व अथवा मिथ्यात्व व्याप्य दोषजन्यत्व इस व्याप्ति को जानता है। वह व्यक्ति ब्रह्मभिन्नोंमें अविद्याजन्यत्व रूप हेतु को देखकर मिथ्यात्व का अनुमान करता है। तथा दोषजन्यहेतुत्व को देखकर के भी मिथ्यात्व अनुमान करता है। वैसे ब्रह्मभिन्नत्वज्ञान के विना ही मिथ्यात्व का ज्ञान उत्पन्न होता है तो कहाँ से ब्रह्मभिन्नत्व की हेतुत्व से कल्पना की जाए, यह आक्षेप होता है। तब कहा जाता है। अज्ञानजन्य प्रातिभासिक रजतादिक जैसे मिथ्या होते है वैसे अनादि अज्ञान भी मिथ्या ही होता है। इसलिए श्रुति मे अतोऽन्यदार्तम् (इसलिए

ध्यान दें:

ब्रह्म से भिन्न सब मिथ्या है) कहा गया है। इस श्रुति के द्वारा ब्रह्मभिन्न सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है यह प्रतिपादित किया जाता है। रजत में अज्ञानजन्यत्व तथा दोषजन्यत्व होता है लेकिन अज्ञान में अज्ञानजन्यत्व तथा दोष जन्यत्व नहीं होता है क्योंकि अज्ञान अनादि होता है। वह जन्य नहीं होता है। लेकिन उसमें मिथ्यात्व है। तो अज्ञान का मिथ्यात्व साधन के लिए कोई हेतु कल्पनीय होना चाहिए। जैसे रजत का मिथ्यात्व मिथ्यात्व साधन में ब्रह्मभिन्नत्व अनङ्गीकार करके अज्ञानजन्यत्व तथा दोषजन्यत्व को ही हेतु के द्वारा आक्षेप कर्ता ने अङ्गीकार किया गया है। उसी प्रकार यह दोनों यहाँ मिथ्यात्व के साधन नहीं होते हैं। परन्तु अज्ञान में ब्रह्मभिन्नत्व नहीं होता है। अतः अज्ञान में मिथ्यात्व साधन के लिए जैसे ब्रह्मभिन्नत्व हेतुत्व के द्वारा अङ्गीकार करना चाहिए ही वैसे अन्य जगह भी रजतादि में ब्रह्मभिन्नत्व अङ्गीकार किया गया है इससे लाघव भी होता है।

जब तक साध्य जो मिथ्यात्व है। वह क्या है यह नहीं जाना जाएगा। तब तक किसी भी पदार्थ के मिथ्यात्व का अनुमान नहीं लगा सकते हैं। इसलिए सबसे पहले मिथ्यात्व का लक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है।

8.6 मिथ्यात्व

स्वाश्रयत्वेन अभिमत-यावन्निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वम् मिथ्यात्वस्य लक्षणम्।

स्वाश्रयत्व से अभिमत यावत् निष्ठातत्यन्ताभावप्रतियोगित्व ही मिथ्यात्व का लक्षण है।

यहाँ क्रमशः इस लक्षण का पदकृत्य प्रस्तुत किया जा रहा है। लक्षण का एकांश अत्यन्त अभाव प्रतियोगित्व होता है उस अंश को लेकर पदकृत्य उपस्थापित किया जा रहा है।

यदि अत्यन्ताभावयोगित्व इतना ही मिथ्यात्व का लक्षण करें तो ब्रह्म से भिन्न होने के कारण ब्रह्मभिन्न सब मिथ्या है, इस मिथ्यात्व के अनुमान में सिद्धसाधन दोष उत्पन्न होता है।

अवयवों के कारण घट अनित्य है, अवयवों के कारण, इस प्रकार से इस अनुमान में अनित्यत्व क्या है तो कहते हैं कि अनित्वत्व ही कार्यत्व है। तब वह ही अनुमान घट कार्य होता है अवयवों के कारण इस प्रकार से कह सकते हैं। उसी प्रकार मिथ्यात्व अनुमान में भी अनुमान का आकार इस प्रकार का ही होता है- ब्रह्मभिन्न सब कुछ अत्यन्त अभाव प्रतियोगी होते हैं ब्रह्मभिन्नत्व के कारण। यहाँ पर सिद्धसाधनत्व दोष है। वह कैसे? तब कहतें हैं कि घटादि एकत्र होते हैं तो अन्यत्र उसका अत्यन्ता अभाव होता है। इस अत्यन्त अभाव के प्रतियोगी घटादिक होते हैं। प्रतियोगित्व घटादियों में होता है। इस प्रकार से घटादियों में अत्यन्त अभाव प्रतियोगित्व सिद्ध होता है। उसके साधन के लिए कहते हैं की ब्रह्म से भिन्न सब अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व होता है ब्रह्म से भिन्न होने के कारण, इस अनुमान सिद्धि का साधन करते हैं तो उसका सिद्धसाधनत्व दोष उपस्थित होता है।

इसलिए मिथ्यालक्षण में कुछ संसोधन करते हैं। वह है- स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्।

जिसमें मिथ्यात्व साधना है 'स्व' पद से उसका ग्रहण करना चाहिए। घटादि में मिथ्यात्व साधना है तो स्वयं घटादिक होते हैं। स्वयं के जिस आश्रय में तादात्म्य सम्बन्ध के साथ होता है, उस आश्रय में स्व का अत्यन्त अभाव कभी नहीं होता है। स्व के आश्रय में विद्यमान अत्यन्ता भाव का स्वयं प्रतियोगित्व नहीं होता है। इसलिए स्वयं में स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है। अतः इस प्रकार का प्रतियोगित्व सिद्ध नहीं होता है तथा उससे प्रोक्त सिद्ध साधनत्व दोष उत्पन्न होता

ध्यान दें:

है लेकिन इस प्रकार का प्रतियोगित्व अप्रसिद्ध मिथ्यात्म अनुमान का असम्भवदोष अथवा साध्यप्रसिद्धि दोष ही उत्पन्न होता है।

(अप्रसिद्ध इसका अर्थ है कि अलीक पदार्थ, अथवा उस प्रकार के पदार्थ प्रमा नहीं होते हैं। मिथ्यात्व के अनुमान में मिथ्यात्व साधना चाहिए। लेकिन स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व मिथ्यात्व होते हैं, इस प्रकार से यदि ये मिथ्यात्व होते हैं तो उस प्रकार का मिथ्यात्व अप्रसिद्ध होता है। अत: यहाँ साध्य अप्रसिद्धिदोष उत्पन्न होता है।

साध्य अप्रसिद्धि दोष के निवारण के लिए लक्षण इस प्रकार से परिष्कृत किया जाता है -स्वाश्रयत्वेन अभिमत-निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम् (स्वाश्रयत्व के द्वारा अभिमत निष्ठा, अन्यन्त अभाव प्रतियोगित्व मिथ्यात्व कहलाता है) इस प्रकार से लक्षण किया जाता है। यहाँ जिसका मिथ्यात्व है वह स्व पद से बोध करने योग्य है। अर्थात् स्व का आश्रय रूप से अभिमत पदार्थ में वर्तमान जो अत्यन्त अभाव प्रतियोगित्व होता है वह मिथ्यात्व होता है। जिस प्रकार से शुक्तिरजतस्थल में तथा पुरोवर्तिनी पदार्थ में इदं रजतम् (यह रजत है) इस प्रकार की प्रतीती होती है। यहाँ पर इदं विशेष है तथा रजत प्रकार है। रजत का आश्रय वस्तुत: इदं पद नहीं है लेकिन रजत का आश्रय रूप इदं प्रतीत होता है। अर्थात् रजतप्रकारक प्रतीति का विशेष्य इदं प्रतीत होता है। इसमें रजत का अत्यन्ताभाव है। इस प्रकार से अत्यन्ताभाव की 'यह रजत नहीं है' इस प्रकार की प्रतीति होती है। इस अत्यन्त अभाव का प्रतियोगी रजत होता है। प्रतियोगी रजत्व में होने के कारण रजत में मिथ्यात्व होता है। यहाँ पर स्व का अर्थ है रजत का, आश्रय का अर्थ है पूरवर्ती पदार्थ,अभिमत का अर्थ है इसमें, स्वस्य का अर्थ है रजत का, इस प्रकार से अत्यन्ताभाव होता है। अत: स्वस्मिन् स्वाश्रयत्वेन अभिमतनिष्ठात्यन्ताभावस्य प्रतियोगित्वम् इति इस लक्षण से रजत का मिथ्यात्व सिद्ध होता है। इस प्रकार ऐसा साध्य प्रसिद्ध होता है जिससे उपरोक्त दोषों का निवारण हो जाता है।

स्वाश्रयत्वेन अभिमत-निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्, इस प्रकार का लक्षण करने पर भी सिद्धसाधनत्वदोष उत्पन्न होता है। जैसे वृक्ष की शाखा में एक जगह बन्दर बैठा है। इसलिए यहाँ पर बन्दर का संयोग वृक्षपर शाखा अवच्छेदन के द्वारा होता है। यहाँ पर संयोग आधेय है तथा वृक्ष आधार है। अत: आधेयता सम्बन्ध के द्वारा वृक्ष संयोगवान है इस प्रकार की प्रतीति उत्पन्न होती है। आधेयता सम्बन्ध मूलावच्छेद से कपि का संयोग नहीं होता है। इसलिए संयोग का अभाव वृक्ष इस प्रकार की प्रतीति उत्पन्न होती है। संयोग के आश्रयत्व से अभिमत वृक्ष में संयोग का अभसव भी होता है। अत: संयोगाश्रयत्व से अभिमत वृक्ष में जो अत्यन्त अभाव होता है,उसका प्रतियोगित्व संयोग में तो जाना जा चुका है। उसके ज्ञान के लिए मिथ्यात्व अनुमान की आवश्यक्ता नहीं होती है। इसलिए इन स्थलों में मिथ्यात्व सिद्धि ही है, जिससे मिथ्यात्व अनुमान में सिद्धसाधत्वदोष उत्पन्न होता है।

मिथ्यात्व अनुमान के द्वारा मिथ्यात्व साधना चाहिए लेकिन यदि स्वाश्रयत्व से अभिमत निष्ठात्यन्त अभाव प्रतियोगित्व होता है वह मिथ्यात्व कहलाता है। इस प्रकार से यह लक्षण भी मिथ्यात्व को नहीं साधता है। मिथ्यात्व तो सत्यत्व के विरुद्ध होता है। लेकिन यह लक्षण सत्यविरुद्ध मिथ्यात्व के बिना साधे ही अर्थान्तर की कल्पना करता है। वह अर्थान्तर क्या है। इस लक्षण से किसका मिथ्यात्व आता है। कहते कपि संयोग का। कपि का संयोग स्व अत्यन्त अभाव प्रतियोगी है इसलिए अर्थान्तर की कल्पना होती है। पदार्थ जिस अधिकरण में होतें है उस अधिकरण में यदि उसका अत्यन्त अभाव भी हो तो वह पदार्थ अव्याप्यवृत्ति युक्त कहलाता है। कपि संयोग में स्वात्यान्त अभाव प्रतियोगित्व ही इस अव्याप्यवृतित्व का साधन करता है, यह इसका लक्षण होता है। इस प्रकार से ही यदि मिथ्यात्व होता है तो वह सत्य के विरुद्ध भी नहीं होता है। अव्याप्यवृत्तित्वरूप अर्थान्तर की भी कल्पना होती है। लेकिन यह भी एक

ध्यान दें:

दोष है। इसलिए इस दोष के निवारण के लिए लक्षण में और भी परिष्कार का विधान किया जाता है। स्वाश्रयत्वेन अभिमत-यावन्निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्, यह लक्षण किया जाता है। यावत् पदार्थ का अर्थ यहाँ पर साकल्य है अर्थात् समस्त अवयव। और स्वाश्रयत्व से अभिमत में सम्पूर्ण पदार्थों में समस्त अवयात्मक में स्थित जो अत्यन्त अभाव होता है यदि उसका प्रतियोगीत्व स्व हो तो स्व का मिथ्यात्व होता है। सम्पूर्ण अवयवों में शुक्त्यात्म वस्तुओं में वर्तमान होता है जो अत्यन्त अभाव तत्प्रतियोगित्व रजत का होता है। इसलिए रजत की मिथ्यात्व सिद्धि होती है।

इस प्रकार से - स्वाश्रयत्वेन अभिमत-यावन्निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वम् इति मिथ्यात्वस्य यह लक्षण सिद्ध होता है।

स्वं अर्थात् मिथ्यात्व से अभिमत पदार्थ। उसका आश्रयत्व से अभिमत जो वस्तु यावत् वस्तु होती है। उसमें निष्ठ जो अत्यन्त अभाव होता है, तत्प्रतियोगित्व मिथ्यात्व कहलाता है। जैसे स्वयं घटादिक तथा उसेक आश्रयत्व से अभिमत कापालादिक। उसमें निष्ठ अत्यन्त अभाव घट आदि का अत्यन्त अभाव होता है। उसके प्रतियोगित्व घटादि होते हैं। अत: घटादि का मिथ्यात्व सिद्ध हो चुका है। व्यावहारिक घटादि कपालादि होते ही है। इसलिए उन कपालादि में अत्यन्त अभाव नहीं होता है। फिर भी पारमार्थिकत्व के द्वारा घटादि कभी भी कपालादि में नहीं होते है। इसलिए पारमार्थिकत्व से कपाल में घटादि का अत्यन्ताभाव होता है।

पाठगत प्रश्न 8.5

1. किस श्रुति के द्वारा जगत् का मिथ्यात्व जाना जाता है?
2. जगत् के मिथ्यात्व में क्या अनुमान होता है?
3. मिथ्यात्व का परिष्कृत लक्षण क्या होता है।

8.7) उपमान

उपमान के ज्ञान के लिए सादृश्य का ज्ञान अपेक्षित होता है इसके बारे में लौकिक दृष्टान्त के माध्यम से कुछ लिखते है।

8.7.1) सादृश्य

संसार में अनेक पदार्थ होते हैं उनमें साधरण धर्म होते हैं जैसे वटवृक्ष आमवृक्ष। वटवृक्ष का बीज होता है बीजा रोपण से वटवृक्ष अङ्कुरित होता है तथा क्रमश: बढ़ता है उससे शाखा उत्पन्न होती है। तथा उनमें पत्ते होते हैं। शाखाओं से प्रसाखा उत्पन्न होती है। तथा छाया भी होती है। वृक्ष ऊपर की और बढ़ते है। इस प्रकार से आम्रवृक्ष के विषय में भी है। इस प्रकार से वट के अनेक धर्म आम्रवृक्ष में भी होते है। ये धर्म जिस प्रकार से वट में होते हैं वैसे ही आम्रवृक्ष में भी होते हैं। इसलिए वटसदृश आम्रवृक्ष होता है इस प्रकार का व्यवहार संसार में कर सकते हैं। व्युत्क्रम से आमवृक्ष के अनेक धर्म वट में होते है इसलिए कोई कहने का इच्छुक है तो आम्रवृक्ष के सदृश वट वृक्ष होता है इस प्रकार का भी वाक्य बन सकता है। लेकिन वट के कुछ असाधारण धर्म होते हैं जो आम्रवृक्ष में नहीं होते हैं। यहाँ वटवृक्षनिष्ठ जो असाधारण धर्म होते हैं। उनसे भिन्न वटवृक्षगतधर्म ही सादृश्य होते हैं। इसलिए सादृश्य का लक्षण बताया गया हैं कि 'असाधारणान्यतद्गतबहुधर्मवत्त्वम्' इति। असाधारणों से अन्य जो उसमें बहुत से धर्म होते हैं वे असाधारणान्यतद्गतधर्मा कहलाते हैं, और ये जिसमें है वह असाधारणान्यतद्गतबहुधर्मवान्,

ध्यान दें:

कहलाता है। उसका भाव असाधारणान्यतद्गतबहुधर्मत्व होता है।

इसका अपर भी लक्षण है तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम् (उससे भिन्न होने पर भी उसमें होने वाला धर्म।) जैसे आम का वृक्ष वट वृक्ष से भिन्न है, इसलिए उसमें वटभिन्नत्व है। वट के जो अधिक धर्म होते हैं वे आम्रवृक्ष में भी यहाँ पर लक्षण समन्वय होता है। जैसे गाय से भिन्न भैंस में भी। चार पैर, पूँछ, दो सींग, इत्यादि अधिक धर्म गाय के धर्म भैंस में भी होते हैं। अत: गाय से भैंस की भिन्नता भी है तथा गोगत अधिक धर्म उसमें होने से भैंस में गोसादृश्य भी है। सादृश्य सम्बन्ध विशेष होता है। इसलिए उसका एक प्रतियोगी होता है तथा अपर अनुयोगी।

जब गोगत धर्म भैंस में होते हैं अर्थात् गोसादृश्य महिष में होता है इस प्रकार से विवक्षा होती है,तब गौ निरूपित सादृश्य का प्रतियोगी, तथा महिष सादृश्य का अनुयोगी कहलाता है। गो निरुपित सादृश्य महिषनिरूपित सादृश्य से भिन्न ही होता है। नहीं तो गोसदृश महिष के दर्शन में महिष सदृश देखता हूँ इस प्रकार की प्रयोगापत्ति आ जाती है। गोदर्शन से गो सदृश देखता हूँ यह प्रयोगाप्ति होती है।

8.7.2) उपमान

चैत्र नाम का कोई व्यक्ति गाय को जानता है। लेकिन गवय (जंगली गाय) किसे कहते हैं यह नहीं जानता है। गवय कोई वन्य पशु विशेष होता है। चैत्र वन में जाता हुआ वन के किसी व्यक्ति से जिसे गवय का ज्ञान है पूछता है कि गवय क्या होता है। तब उससे वह व्यक्ति कहता है कि जैसे गौ होती है वैसे ही गवय भी होता है। इस वाक्य से 'गोसदृश गवय होता है' इस प्रकार का परोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके बाद वन में जाने पर चैत्र एक पशुओं के झुण्ड को देखता है। वास्तविक रूप से वह पशु गोसदृश होता है। इसलिए गो सदृश गवय होता है इस वाक्य को चैत्र स्मरण करता है । चैत्र की स्मृति में भी गोसादृश्य है तथा सम्मुख स्थित पशु भी गोसादृश है। तब वह सम्मुख स्थित पशु में गो सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण करता है। इस प्रकार से स्मरणात्मक ज्ञान से गो सादृश्य विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान से यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये सभी पशु जाति वाले सभी पशु गवय पद से वाच्य है।

गवय में गोसादृश्य होने से गो देह में गवय सादृश्य का ज्ञान होता है। गवय सन्निहित होता है लेकिन गौ असन्निहित होता है। गाय के साथ किसी भी इन्द्रिय का कोई भी सन्निकर्ष नहीं होता है। फिर भी इस असन्निहित गाय में होने वाला यह गवयसादृश्य ही उपमिति कहलाता है। गवय में गोसादृश्य के जानने पर ही गाय में गवय सादृश्य का ज्ञान होता है यह अन्वय सहचर्य होता है। गवय में गोसादृश्य के अज्ञात होने पर गाय में भी गवय सादृश्य नहीं जाना जाता है। इस प्रकार का व्यतिरेक सहचर्य होता है। इसलिए गाय में गवयसादृश्य ज्ञान के प्रति गवय निष्ठगोसादृश्यज्ञान करण होता है। वह ही उपमान कहलाता है।

चैत्र जंगल में पशु के देह में गोसादृश्य को देखता है। गोसदृश यदि गवय को जान ले तो वह उस पशुदेह में गोसादृश्य को नहीं देखे। इसलिए गोसदृश गवय होता है। यह ज्ञान अपेक्षित है। यहाँ पर उपमेय गवय होता है। चैत्र के उपमेय आकार वाली अन्त: करण वृत्ति का जन्म होता है। इय वृत्ति ही उपमान कहलाती है। गवयनिष्ठ गोसादृश्य के विना यह वृत्ति उत्पन्न नहीं होती है, इसवृत्ति का जनक गवयनिष्ठ गोसादृश्यज्ञान होता है। इसलिए यह सादृश्यज्ञान गौण उपमान कहलाता है। मुख्य उपमान तो उपमेय आकार वाली वृत्ति ही होती है। यह वृत्ति ही उपमान प्रमाण कहलाती है। उसके बाद चैत्र सोचता है कि मेरी गाय गवय सदृश है। अब गोनिष्ठ गवयसादृश्यज्ञान उसको होता है। यह ज्ञान ही उपमिती है, यदि उपमेय आकार वाली वृत्ति उत्पन्न नहीं हो तो गोनिष्ठ-गवयसादृश्यज्ञान भी उत्पन्न नहीं होगा। इसलिए वह वृत्ति उपमान प्रमाण कहलाती है।

सन्निहित गवय में गोसादृश्यज्ञान उपमानप्रमाण होता है तथा असन्निहित गाय में गवयसादृश्यज्ञान

ध्यान दें:

उपमिति कहलाता है।

गोनिष्ठ गवयसादृश्य को प्रत्यक्ष प्रमाण से तो नहीं जाना जा सकता है क्योंकि इन्द्रिय का गाय के साथ कोई भी सन्निकर्ष नहीं होता है। गाय धर्मी होती है। तथा गवय सादृश्य धर्म होता है। धर्मि के इन्द्रिय के साथ सन्निकर्ष के अभाव में धर्म के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष संभव नहीं होता है। इस प्रकार से गो गत सादृश्य के द्वारा इन्द्रियार्थसन्निकर्ष के अभाव से गोनिष्ठसादृश्यविषयक प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। गवय में गोसादृश्य ही गाय में गवय सादृश्य है ऐसा नहीं कह सकते है। गोसदृश गवय के दर्शन में गवय सदृश देखता हूँ यह प्रयोगापत्ति होती है तथा गो दर्शन में गोसदृश को देखता हूँ यह प्रयोगापत्ति होती है।

पाठगत प्रश्न 8.6

1. सादृश्य का क्या लक्षण है?
2. कौन सादृश्य का प्रतियोगी होता है?
3. गोनिरूपितसादृश्य से गवयनिरूपितसादृश्य एक है अथवा भिन्न?
4. क्या उपमान प्रमाण होता है?
5. उपमिति किसे कहते हैं?

पाठ सार

इस पाठ में अनुमान तथा उपमान इन दोनों प्रमाणों का आलोचन किया गया है। वहाँ अनुमितिकरण अनुमान स्वरार्थ तथा परार्थ के भेद से दो प्रकार का होता है। नैयायिकों के मत के साथ वेदान्तियों के मत का विरोध है। इसलिए दोनों दर्शनों की भी अनुमान प्रक्रिया यहाँ पर प्रदर्शित की गई है। वहाँ सबसे पहले न्यायसम्मत स्वार्थानुमानक्रम प्रदर्शित है। उसके बाद वेदान्त सम्मत अनुमान क्रम प्रतिपादित किया गया है।

यदि अनुमिति का ज्ञान हो तब ही अनुमितिकरण अनुमान जाना जा सकता है। इसलिए सबसे पहले अनुमिति किसे कहते है इसका आलोचन किया गया है। उसके बाद परार्थानुमान प्रदर्शित किया गया है। अनुमान का हृदय व्याप्ति होता है। इसलिए यहाँ पर व्याप्ति समझाई गई है तथा उसके बाद उसके सद् हेतु ओं को कहकर जगत् का मिथ्यात्व कहा गया है। अर्थात् जगन्मिथ्यात्व का अनुमान प्रदर्शित किया गया है। वह मिथ्यात्व के लक्षण के बिना जगत् का मिथ्यात्व नहीं जाना जा सकता है, इसलिए हेतु के मिथ्यात्व लक्षण को भी परिष्कृत किया गया है।

अनुमान के बाद उपमान प्रमाण प्रतिपादित किया गया है। सादृश्य ज्ञान के बिना उपमानप्रामाण अच्छी प्रकार से नहीं समझा जा सकता है इसलिए सबसे पहले सादृश्य को बताया गया है।

आपने क्या सीखा

- न्याय सम्मत अनुक्रम को जाना,
- वेदान्त सम्मत अनुमानक्रम को जानकर अनुमान करने में प्रवीणता की ओर अग्रसर,
- दोनों दर्शनों में मत को जाना,
- स्वार्थनुमान तथा परार्थानुमान को जाना,

ध्यान दें:

- व्याप्ति तथा सद्हेतु को जाना,
- सादृश्य को जानकर उपमान को जाना;

पाठान्त प्रश्न

1. न्याय सम्मत अनुमानक्रम प्रतिपादित कीजिए।
2. वेदान्तिसम्मत अनुमानक्रम प्रतिपादित कीजिए।
3. व्याप्तिज्ञान का अनुमान के प्रति करणत्व प्रतिपादन कीजिए।
4. वेदान्त तथा न्याय का अनुमान भेद लिखिए।
5. व्याप्तिज्ञानत्व से व्याप्तिज्ञानजन्या अनुमिति का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
6. अनुमिति के लक्षण का दलकृत्य करके प्रस्तुत कीजिए।
7. अनुमिति का आलोचन कीजिए।
8. पारार्थानुमान का वर्णन कीजिए।
9. अनुमिति में किस अंश का अनुमितित्व होता है उदाहरण सहित प्रतिपादन कीजिए।
10. मिथ्यात्व का परिष्कृत लक्षण सदलकृत्य करके लिखिए।
11. मिथ्यात्व के परिष्कृत लक्षण का समन्वय लिखिए।
12. सादृश्य का वर्णन कीजिए।
13. उपमान का निरूपण कीजिए।
14. उपिमिति का निरूपण कीजिए।
15. उपमान प्रत्यक्ष के द्वारा कैसे गतार्थक होते हैं।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 8.1

1. अनुमिति के व्याप्तिनत्व के द्वारा व्याप्तिज्ञानजन्य होती है।
2. स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमान के भेद से अनुमान दो प्रकार का होता है।
3. पर्वत वह्निमान है
4. जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ-वहाँ आग होती है। सहचर्य के दर्शन में धुआँ व्याप्ति व्याप्य होता है। इस प्रकार से व्याप्ति विषयक प्रत्यक्ष अनुभव उत्पन्न होता है।

   यह व्याप्ति का अनुभव ही व्याप्तिज्ञान के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। यह प्रथमलिङ्गपरामर्श कहलाता है।
5. पक्षधर्मता ज्ञान।
6. उद्बुधव्याप्ति संस्कार।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 8.2

1. प्रतियोगित्व रूप से।
2. व्याप्तिज्ञान के द्वारा
3. अनुभवत्व के द्वारा
4. अनुमिति में
5. व्याप्तिज्ञानत्वावच्छिन-जनकतानिरूपित-जन्यतावज्ज्ञानत्वं हि अनुमितेः लक्षणम्।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 8.3

1. पर का अर्थ प्रयोजन साध्यसंशयनिवृत्ति रूप होता है।
2. तीन।
3. वह्निप्रकारकांश में।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 8.4

1. घट तथा पट समानाधिकरण में होते है।
2. अशेषसाधनाश्रयाश्रितसाध्यसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिलक्षणम्।
3. जिस हेतु में व्याप्ति है तथा जो हेतु के पक्ष में वह हेतु सद् हेतु कहा जाता है।
4. अन्वय एक ही प्रकार का होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 8.5

1. नेह नानास्ति किञ्चन। अतोऽन्यदार्तम्।
2. ब्रह्मभिन्नं सर्वं मिथ्या ब्रह्मभिन्नत्वात्।
3. स्वाश्रयत्वेन अभिमत-यावन्निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वम् मिथ्यात्वस्य लक्षणम्।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 8.6

1. सादृश्यलक्षण असाधारणान्यतद्गतबहुधर्मवत्त्वम् इति। दूसरा भी लक्षण है- तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम्।
2. यद्गतभूयांसो धर्माः अन्यस्मिन् सन्ति इति विवक्षा यस्य धर्माः सः प्रतियोगी भवति। यथा गोगताः भूयांसो धर्माः गवये सन्ति इति विवक्षा तदा गोः धर्माः इति गौः प्रतियोगी।

   (जिसमें बहुत अधिक धर्म होते है,अन्य में भी होते है इस प्रकार की विवक्षा होती है जिसकी वह प्रतीयोगी होता है। जैसे गोगत अधिक धर्म गमय में होते है इस प्रकार की जिज्ञासा जिसको होती है तब वह गो धर्म इस प्रकार से गौ प्रतियोगी कहलाता है।
3. भिन्न।
4. यस्मिन् सादृश्यम् उपमितौ भासते तन्निरूपितसादृश्याकारा प्रमाणवृत्तिः उपमानम्।
5. असन्निहिते सन्निहितनिरूपितसादृश्यज्ञानम् उपमितिः।